# अन्तर्नाद आनन्द का स्वरुप व उसकी प्राप्ति के उपाय

**DR. MANOHAR LAL**
Assistant Professor, Thakur Jagdev Chand Smarak Govt. College, Tehra, Hamirpur

## सार संक्षेपिका

सांसारिक व्यस्तताओं में उलझा इन्सान आनन्द की खोज में इधर–उधर भटकता रहता है। कभी भौतिक वस्तुओं में आनन्द ढूंढता है कभी किसी के बहकावे में आकर छला जाता है। कभी सांसारिक रिश्तों में आनन्द ढूंढता है कभी बुरी संगत में पड़कर जीवन को बर्बादी की ओर धकेल देता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में सुख–दुःख के कारण, आनन्द का स्वरुप व उसकी प्राप्ति का सरल उपाय खोजने का प्रयास किया गया है जो जन साधारण को वास्तविक आनन्द और शान्ति प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होगा।

## बीज शब्द

अन्तर्नाद, आनन्द

## भूमिका

इस संसार का प्रत्येक प्राणी जन्म से मृत्यु पर्यन्त सुख की कामना करता है और एक आनन्द पूर्ण जीवन जीने के लिए सदा प्रयासरत रहता है। परन्तु सदैव सुख या आनन्द ही मिले ऐसा वास्तविकता में सम्भव नहीं होता क्योंकि सुख और दुःख जीवन की सच्चाई है। इस सुख–दुःख से हटकर आनन्द की स्थिति को किस प्रकार प्राप्त किया जाए जिससे मानसिक सन्तुलन बना रहे और प्रत्येक परिस्थिति में हम आनन्दमग्न होकर रह सके। इसके लिए पहले सुख–दुःख होने के कारणों को जान लेना जरुरी है।

पौराणिक मतानुसार मनुष्य को तीन प्रकार के ताप संताप या दुःख सदैव प्रभावित करते हैं उन्हीं से बचने के लिए भगवान की शरण लेना आवश्यक है और वे ताप हैं– आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप।

''तापत्रय विनाशाय श्री कृष्णाय वयं नुमः''

(भा0 म0 महात्म्य अध्याय 1 श्लोक 1)

व्यास जी कहते हैं कि तीनों तापों का विनाश करने वाले श्री कृष्ण को हम नमस्कार करते हैं। इन तीनों तापों की व्याख्या इस प्रकार है :–

### 1. आधिभौतिक

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि ''दुःखालयम अशाश्वतम'' (भ. गीता 8/15) यह संसार दुःख का घर है अर्थात संसार में जो भी वस्तुऐं हम देख रहे हैं ये पंचभौतिक वस्तुऐं है और सभी नश्वर है। हम ऐसे संसार में आनन्द की खोज कर रहे हैं जहाँ आनन्द है ही नहीं। जिस प्रकार पानी का बुलबुला हवा में उड़ता बड़ा सुन्दर दिखाई देता है परन्तु यदि उसे पकड़ने या छूने का प्रयास किया जाए तो तुरन्त फूट जाता है उसी प्रकार यह संसार भी सर्वथा नश्वर है। हम जहाँ से भी सुख की कामना करते हैं वहीं से दुःख मिलता जो दुःख का कारण बनता है।भौतिक

वस्तुओं की कामना की पूर्ति न होने पर जो दुःख होता है उसे आधिभौतिक ताप कहते हैं। भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति होना न होना हमारे कर्मों पर निर्भर करता है। यदि पूर्व जन्म में अच्छे कार्य किए होगें तो भौतिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन मिलता है अन्यथा जीवन भर व्यक्ति दो समय का भोजन भी सही से नहीं मिल पाता। यदि इसके पश्चात भी कोई अच्छे कर्म करें तो अगले जन्म में भौतिक सुख प्राप्त करता है। आदि शंकराचार्य ने भज गोविन्दम स्तोत्र में लिखा है किः–

''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनं''

(भज गोविन्दम् स्तोत्र श्लोक 21)

अर्थात पुनः–पुनः जन्म और मरण होता है और बार–बार माँ की कोख में रहकर जठराग्नि में शयन करना पड़ता है इससे सिद्ध होता है कि हम बार–बार जन्मते और मरते है और इस दुःख रुप संसार में भौतिक सुखों की कामना ही करते रहते हैं जो वास्तविक आनन्द नहीं है।

### 2. आधिदैविक

भौतिक वस्तुओं के अतिरिक्त हमें इस संसार में रहकर दैवीय विपदाओं का सामना भी यदा कदा करना ही पड़ता है। इसलिए दैवीय प्रकोप भी हमारे सुख–दुःख का मुख्य कारण है। दैविक प्रकोप से तात्पर्य उन विपदाओं से है जो प्रकृति के कारण मिलती हैं। जो लोग समुद्र तट पर रहते हैं उन्हें सदा खतरा होता है कि कहीं सुनामी न आ जाए। इसी प्रकार कुछ स्थानों पर भूकम्प का खतरा होता है और डर होता है कि कहीं शेर भालू न खा जाए। हमारा जन्म कहीं भी हो किसी न किसी प्राकृतिक आपदा का सामना करना पड़ता है। इसलिए प्राकृतिक आपदा से सदा डर बना रहता है और वह दुःख का कारण बनता है।

### 3. आध्यात्मिक ताप

तीसरा ताप है आध्यात्मिक ताप अर्थात मानसिक दुःख, यदि हमारे पास भौतिक सुख सुविधाऐं उपलब्ध हैं और दैवीय प्रकोप से भी भय नहीं परन्तु अपनी मानसिक या शारीरिक व्यवस्था ठीक नहीं तो हम आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते यदि शरीर ठीक हो परन्तु परिवार में क्लेश हो बेटा–बेटी की चिन्ता हो तो भी जीवन कष्टमय हो जाता है।

हम कितने भी इन्तजाम कर लें सुख और दुःख हमें व्यथित करते ही रहेंगे परन्तु क्या कोई ऐसा रास्ता भी है जो हमें हर परिस्थिति में आनन्द प्रदान करने में सक्षम हो? क्योंकि एक वस्तु की प्राप्ति होने पर दूसरी की कामना तुरन्त जागृत हो जाती है जो दुःख का कारण बनती है अप्राप्त को प्राप्त करने की लालसा और प्राप्त के खो जाने का भय दुःख का कारण बनते हैं इसी प्रकार प्राकृतिक आपदा से भी कोई बच नहीं पाता और परिवार शरीर आदि भी कष्ट देते हैं। जब भौतिक, दैविक व आध्यात्मिक ताप हमें सदा दुःख से संतप्त रखते हैं तो आनन्द कैसे प्राप्त करें? क्या कोई ऐसा साधन है जो सुख–दुःख में समत्व की स्थिति बना दे या उससे निर्लिप्त कर दे यदि है तो उसका स्वरुप क्या है ? शंकराचार्य जी ने भज गोविन्दम स्तोत्र में लिखा है कि–

''योग रतो वा भोग रतो वा, संगरतो वा सङ्.गवीहिनः।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं नन्दति नन्दत्येव''
(भजगोविन्दम् स्तोत्र श्लोक 19)

अर्थात कोई योग में लगा है कोई भोग में लगा है। कोई किसी का संग पाकर आसक्त है कोई निसंग रहता है। परन्तु जिसका मन ब्रह्म में लगा है वो ही आनन्द करता है आनन्द करता है आनन्द ही करता है।

## आनन्द का स्वरुप

वास्तविक आनन्द और काल्पनिक आनन्द को हम सच्चा आनन्द और सांसारिक मोह भी कह सकते हैं। सच्चे आनन्द को समझने के लिए सांसारिक मोह का उदाहरण या आश्रय लेना आवश्यक है तभी सच्चे आनन्द को समझा जा सकता है। जिस प्रकार सुख और आनन्द दोनों अलग–अलग होने पर भी कभी–कभी भ्रमित कर देते हैं अर्थात सुख की कामना में जब आनन्द का स्वरुप धूमिल हो जाता है उसी प्रकार जगत में रहते –रहते काल्पनिकता में जीने की आदत पड़ जाती है और फिर सत्यता धूमिल हो जाती है। इसलिए सुख और आनन्द के इस अन्तर को समझना अत्यन्त आवश्यक है कि सुख सांसारिक पदार्थों से होता है और आनन्द परालौकिक अनुभव से मिलता है। इसी प्रकार जो सांसारिक बन्धन है वे मिथ्या है और ब्रह्म साक्षात्कार सत्य है।

जिस प्रकार बालक का माता–पिता से निश्च्छल प्रेम होता है और निरन्तर रहता है अब बालक को कुछ समय के लिए माता–पिता से दूर भेज दिया जाए और कहा जाए कि 2 साल बाद मिलना होगा। बालक भी वहाँ खेलकूद या पढ़ाई में व्यस्त हो जाए तो क्या वह याद करेगा परन्तु उसके मन में होगा कि अभी बहुत समय है मिलने के लिए इसलिए ज्यादा व्यथित नहीं होगा। अब यदि अचानक किसी दिन उसके माता–पिता उसके सामने आ जाऐं तो उसकी आंखो में जो खुशी होगी वो वास्तव में आनन्द की अनुभूति कहलाएगी।

इसके विपरीत यदि किसी अबोध बालक को सभी खेल–खिलौने दे दिए जाऐं तो उनसे खेलने की एक सीमा होगी उस सीमा के पश्चात वह अपनी माँ को ढूंढेगा और यदि माँ मिल जाए तो सभी खेल खिलौने छोड़कर माँ से लिपट जाएगा अर्थात फिर सभी भौतिक वस्तुओं की कामना समाप्त हो जाती है।

## आनन्द की परिभाषा

आनन्द एक ऐसा अनुभव है जो चिर काल से दबी कामना की पूर्ति करता है। भौतिक वस्तुऐं कुछ काल तक सुख प्रदान करती हैं परन्तु वह सुख अस्थायी होता है। क्योंकि जैसे ही उस वस्तु का आकर्षण समाप्त हो जाता है उससे मिलने वाला सुख भी समाप्त हो जाता है। इसलिए आनन्द या परमात्मा परब्रह्म की प्राप्ति में आता है या माता–पिता की प्राप्ति पर। बालक माता पिता के अचानक मिलने पर जो आनन्द प्राप्त करता है उसे शब्दों में संजोया नहीं जा सकता। इसी प्रकार

जो हमारा परब्रह्म से प्रेम है उसे यदि प्राप्त कर लिया तो जीवन भर उदासी दुःख इत्यादि का नाम भी नहीं रहेगा इसलिए आनन्द एक ऐसी अनुभूति है जो हमें सदैव प्रसन्न रख सकती है।

भौतिक जगत में जब हम देखते हैं तो प्रतीत होता है कि माता–पिता का जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि उनसे हमें जीवन मिलता है सर्दी, गर्मी, भूख–प्यास, सभी बातों का बिना कहे उन्हें पता चल जाता है और वे इनसे हमारी रक्षा भी करते हैं जब हम चलना सीखते हैं तो हमारा हाथ पकड़ लेते हैं। खेल–खिलौने, कपड़े भोजन सब समय–समय पर देते हैं। पढ़ने–लिखने के लिए सब व्यवस्था करते हैं अच्छे बुरे का भेद बताते हैं। समाज में किस प्रकार व्यवहार करना है ये भी सिखाते हैं और फिर हमें इस काबिल बनाते हैं कि हम अपना जीवन–निर्वाह स्वयं कर सकें अपने निर्णय स्वंय ले सकें। रोजगार विवाह घर–बार बनाने में सहायता करते हैं। परन्तु हम उन्हें कितना लौटा पाते हैं ये हम पर निर्भर करता है। यदि यह भी कहा जाए कि यह सब उन्होंने मोह में पड़कर किया अथवा ये उनका फर्ज था तो हमारा मोह और फर्ज कहाँ है यदि इस सिद्वान्त को समझ लिया जाए तो परब्रह्म को समझना मुश्किल न होगा।

जिसने माता–पिता की रचना की उनको भी सब भौतिक वस्तुऐं प्रदान की बल्कि सभी जड़ चेतन को आवश्यकता के अनुसार जीवन जीने के लिए प्राणवायु दी, रहने के लिए इतनी बड़ी धरती दी। पीने के लिए स्वच्छ और निर्मल जल दिया सर्दी से बचने को अग्नि दी विचारों की उत्सुकता के लिए आकाश दिया कदम – कदम पर अपनी विशालता का उदाहरण प्रस्तुत किया ऐसा शरीर दिया जिसकी व्यवस्था को आज तक भी वैज्ञानिक समझ नहीं पाए और हमें क्या किया जहाँ इच्छा हुई प्रकृति से खिलवाड़ कर दिया जब इच्छा हुई शरीर का दुरुपयोग कर दिया जबकि प्रकृति की बनाई व्यवस्था के अनुरुप चलने पर हमे कभी नुकसान नहीं होता शरीर की महता को ही भूल गए जबकि स्वस्थ शरीर प्रकृति का सबसे बेहतरीन उपहार है और इतिहास गवाह है जब – जब प्रकृति के साथ छेड़छाड़ हुई प्रकृति कुछ समय बाद सब अपने अनुरुप कर देती है परन्तु मनुष्य को जरुर झटका दे जाती है। जिस प्रकार बालक ज़िद करके बार–बार माँ को परेशान करता है बहुत देर तक वह सहन करती है परन्तु जब बालक जरुरत से ज्यादा तंग करने लगता है तो बस एक थप्पड़ लगाती है और बालक एकदम शांत हो जाता है फिर बहुत देर तक कुछ बोलने की हिम्मत नहीं करता ठीक ऐसा ही प्रकृति भी करती है।

इसलिए आनन्दपूर्ण जीवन जीने के लिए सर्वप्रथम यह तो समझना ही होगा कि जो भी काम हम करें वह हमारे शरीर आसपास के वातावरण और प्रकृति के अनुकूल रहकर करें ताकि किसी प्रकार के झटके की सम्भावना कम से कम हो। बालक जब तक अबोध बना रहता है माँ सदा उसके साथ रहती है पर जैसे ही बालक अपने पाँव पर खड़ा हो जाता है माँ उसको अकेला छोड़ देती है। ये भोलापन और सादापन सदा बना रहे तो प्रकृति सदा साथ होती है।

बालक और माता–पिता का उदाहरण यहाँ इसलिए ठीक बैठता है क्योंकि माता–पिता हमेशा बालक के हित में सब कुछ करते हैं परन्तु बालक को जैसे ही सभी भौतिक वस्तुऐं मिल जाती है विवाह हो जाता है अपना परिवार बस जाता है तो वह माता–पिता पर ध्यान नहीं दे पाता और इसी प्रकार परमात्मा हमें सब कुछ देता है पर सब कुछ मिल जाने पर हम परमात्मा को ही भूल जाते हैं। यदि कोई माँ–बाप की खूब सेवा भी करता है और कहे कि मैं तो माता पिता की खूब सेवा करता हूँ तो अच्छी बात है कि सांसारिक माता–पिता से जुड़ा है परन्तु क्या उसे अपने वास्तविक पिता का भी पता है या भूल गया?

यदि उस परम पिता की याद उसे निरन्तर रहती है अपने सांसारिक माता–पिता के समान वह नित्य उस परमपिता से जुड़ गया है तो वह सदैव आनन्द की स्थिति में रह सकता है। आनन्द हमारे अंतस में छुपा है पर हम उसे खोज नहीं पाते क्योंकि भौतिक वस्तुओं में सुख की अनुभूति में आनन्द को खोज रहे होते हैं रामचरित मानस में तुलसीदास ने आनन्द के विषय में लिखा है कि–

''जो आनन्द सिन्धु सुख राशि सीकर तें त्रिलोक सुपासी
सो सुख धाम राम असनामा। अखिल लोक दायक विश्रामा''

(रामचरित मानस बालकाण्ड)

अर्थात जो आनन्द के सागर है, सुख की राशि है जिनसे तीनों लोक सुखी है ऐसे सुख धाम का नाम राम है जो सम्पूर्ण लोगों को विश्राम प्रदान करते हैं। जो सम्पूर्ण लोकों को विश्राम प्रदान करते हैं। इस चौपाई में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आनन्द और सुख में अन्तर होता है। राम यदि आनन्द के सागर हैं तो सुख की राशि भी हैं अर्थात वे सुख तो देते हैं परन्तु सुख से भी ज्यादा उनके पास आनन्द है। उनका नाम है राम जो सांसारिक भटकन से भटके प्राणियों को विश्राम देते हैं आराम देते हैं। इसलिए यदि वास्तव में आराम और आनन्द चाहिए तो उनसे जुड़ना आवश्यक है। इसी प्रकार भागवत में भगवान श्री कृष्ण को भी आनन्द का स्वरुप बताते हुए व्यास जी कहते हैं।

''सच्चिदानन्द रुपाय विश्वोत्पतियादि हेतवे।
तापत्रय विनाशाय श्री कृष्णाय वयं नुमः।।''

(श्रीमद्भगवत महापुराण महात्म्य अध्याय 1 श्लोक 1)

अर्थात भगवान कृष्ण कैसे हैं सत् चित् और आनन्द स्वरुप। वह परम सत्य स्वरुप हैं, सतत है, निरन्तर है, शाश्वत हैं, सदियों से है। चित्त अर्थात चैतन्य स्वरुप है जड़ नहीं है तभी तो उन्हें आकर्षण का केन्द्र माना जाता है ''कर्षयति इति कृष्ण'' संतो का वाक्य है। वह प्राचीन काल से है और पत्थर नहीं है जड़ नहीं है चेतना से परिपूर्ण है इसके साथ ही वह आनन्द का स्वरुप है अर्थात वे परिपूर्ण तब हैं जब उनमें ये तीनों बातें हैं नित्य शाश्वत होना, चैतन्यता से पूर्ण होना

तथा आनन्द का सिन्धु होना और तभी वह विश्व की उत्पत्ति करते हैं पालन करते हैं और संहार भी करते हैं। वह आनन्द का सागर हैं।

यदि हम इन ग्रन्थों के वाक्यों को मान लें कि वास्तव में राम और कृष्ण आनन्द स्वरुप हैं तो प्रश्न यह उठता है कि उन्हें प्राप्त किस प्रकार किया जाए क्योंकि उन्हें गए तो हजारों साल हो गए। आज उस आनन्द की प्राप्ति किस प्रकार की जाए और आज से हजारों वर्ष बाद भी कोई चाहे तो कैसे इस आनन्द को प्राप्त करें? इस प्रश्न का उत्तर इसी श्लोक में दिया है कि वे शाश्वत है सदैव रहते हैं कभी समाप्त नहीं होते जिस प्रकार शक्ति शरीर में छुपी होती है फिर जितनी आवश्यकता होती है हम उतनी खर्च कर लेते हैं पाँच किलो भार के लिए कोई ज्यादा परिश्रम नहीं करना पड़ता पर 50 किलो के लिए थोड़ा परिश्रम होता है और 500 किलो के लिए और ज्यादा शक्ति चाहिए पर जब पाँच हजार किलो की बात हो तो शरीर काम नहीं कर सकते फिर दिमाग का प्रयोग करके मशीनों द्वारा वह भी साध्य है। इसी प्रकार परमात्मा प्रकट होते हैं अथवा सदैव प्रकट ही है परन्तु हम देख नहीं पाते या जब विशाल रुप में आते हैं तो सबको पता चल जाता है। चलो ठीक है परमात्मा नित्य शाश्वत है सदैव हैं।

परन्तु सभी की उनमें आस्था हो ऐसा भी तो सम्भव नहीं । सभी हमारी विचारधारा के हो ऐसा कदापि नहीं हो सकता हम पृथ्वी पर विभिन्न धर्मों विभिन्न आस्थाओं के लोग रहते हैं बल्कि कुछ तो नास्तिक भी हैं जो न आत्मा को मानते हैं न परमात्मा को मानते हैं। कुछ तो यहाँ तक भी कह देते हैं कि हम बस प्रकृति को मानते हैं परमेश्वर को नहीं। तो क्या कोई ऐसा साधन नहीं जो सभी को एक सूत्र में बाँध सके जिसमें सभी सहमत हो क्योंकि हम जीवन का बहुत सा हिस्सा इसी चर्चा में नष्ट कर देते हैं कि परमात्मा है या नहीं फिर हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई आस्तिक नास्तिक जाति लिंग भेद में पड़कर लक्ष्य से भटक जाते हैं इसलिए जिसमें सभी एकसूत्र में बन्ध सके ऐसा सूत्र भागवत के प्रथम स्कन्ध में व्यास जी ने दिया है लेकिन उससे भी पूर्व उन्होंने जीवन का लक्ष्य क्या है वह समझाया।

कामस्य नेन्द्रिय प्रीति र्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्व जिज्ञासा नार्थों यश्चेह कर्मभिः।।

(श्रीमद् भागवत महापुराण 1.2.10)

अर्थात जीवन का उद्देश्य केवल मात्र कामनाओं की पूर्ति करना ही नहीं है न उत्याधिक धन कमाना है और न ही बड़े–बड़े कार्य करना है जीवन का परम लक्ष्य तो उस परम तत्व को जानना है जिससे ये सब सृष्टि है और अब तो वैज्ञानिकों ने भी मान लिया है कि कोई शक्ति तो है जो अलग है।

आजीविका जीवन चलाने के लिए होती है लेकिन हम जीवन को ही आजीविका के लिए लगा देते हैं जो हमारा परम कर्त्तव्य है उसे ही भूल जाते हैं। इसलिए हमें सदैव उस परम तत्त्व को जानने

का प्रयास करना चाहिए जो इस सब जगत जंजाल का आदि है यहाँ पर एक बात स्पष्ट जानना आवश्यक है कि उस परम तत्त्व का स्वरुप क्या है उसका स्वरुप स्पष्ट करते हुए व्यास जी ने कहा है कि

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते।।
(भा0 म0 पु0 1.2.11)

अर्थात तत्त्व वेताओं ने उस परम तत्त्व को एक ही माना है बस नामों से अन्तर होता है कोई उसे ब्रह्म कहता है कोई परमात्मा कोई भगवान परन्तु वास्तव में वह एक ही है। जिस प्रकार सोने से हार कुण्डल कंगन इत्यादि बनते हैं और विभिन्न नामों से जाने जाते हैं उसी प्रकार वह परम तत्त्व भी विभिन्न रुपों में प्रकट होता है और जो जैसा अनुभव करता है वह वैसा ही नाम दे देता है।

परम – तत्त्व – निरुपण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ब्रह्म | निर्गुण निराकार | ज्ञानी | बहता पानी | सर्वत्र व्याप्त |
| परमात्मा | सगुण निराकारा | योगी | इकट्ठे पानी से बनी विद्युत | एकीकत शक्ति |
| भगवान | सगुण साकार | भक्त | बल्व, पंखे इत्यादि में दृष्टिगोचर | दृष्टव्य |

वह परम तत्त्व परब्रह्म परमात्मा जब सर्वत्र व्याप्त होता है तो निर्गुण निराकार अवस्था में होता है अर्थात गुण रहित और आकार रहित होता है परन्तु जैसे ही एकत्रित होकर सृष्टि रचना के तैयार होता है परमात्मा बनकर सगुण रुप लेकर प्रस्तुत होता है परन्तु दिखाई नहीं देता। जब वही परमात्मा सगुण रुप में आता है तो सबको सगुण साकार रुप में दिखाई भी देता है। जिस प्रकार पानी जब बहता रहता है तो सर्वत्र व्याप्त होता है जब उसे इकट्ठा करके बिजली बनाई जाती है तो सगुण हो जाता है और जब उससे बल्व जलता है तो दिखाई भी देता है।

जिन्हें हम अज्ञानी या अनपढ़ कहते हैं वे उसे भाव से भजते हैं और अपना सर्वस्व मानते हैं जो थोड़े पढ़े लिखे हो जाते हैं वे उसकी शक्ति से परिचित होकर उसे महसूस करके उसे परम आत्मा कहने लगते हैं और जो उससे भी आगे वेद–उपनिषद के ज्ञाता हो जाते हैं ऐसे ज्ञानी पुरुष उसे परब्रह्म कहते हैं। तत्त्व एक ही है रूप अलग–अलग हैं। पहली कक्षा के बच्चे वर्णमाला सीखकर ही प्रसन्न हो जाते हैं उन्हें होने दो। उन्हें यदि दसवीं कक्षा का हिसाब सीखाना चाहोगे तो या तुम फेल हो जाओगे या वो भाग जाऐंगे।

प्रत्येक जीव का अपना स्तर है और कोई अपने स्तर पर कम नहीं क्योंकि रसखान ने कहा है –

''शेष गणेश महेश दिनेशहुं जाहि निरंतर गावैं
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भर छाछ पै नाच नचावै''

भगवान भाव का विषय है तर्क का नहीं इसलिए उस परब्रह्म को हम किसी भी रुप में अपनाऐं परिणाम एक ही है उस परम तत्त्व की प्राप्ति।

जो परब्रह्म परमात्मा भगवान ज्ञानियों योगियों और भक्तों के लिए जानने का विषय है वह इस संसार में प्रकट रुप में संगीत में विद्यमान है। संगीत केवल ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम उस परब्रह्म को स्वतः ही जान सकते हैं क्योंकि संगीत का मूल है नाद और नाद को ही ब्रह्म कहा गया है। इसलिए संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि संगीत अपने आप में ब्रह्म प्राप्ति का साधन है क्योंकि संगीत का अलग धर्म अलग भाषा अलग सिद्धांत होता है। वह सभी के लिए सर्वथा समान रुप से लाभप्रद होता है इसलिए इह लोक और परलोक में आनन्दायक होता है। योग शिखोपनिषद में नाद को सर्वोच्च मंत्र व नादानुसंधान को सर्वश्रेष्ठ पूजा कहा है।

''नास्ति नादोत्परो मन्त्रों न देवः स्वात्मनः परः।
नादानुसंध पर : पूजा नहि तृप्तः परं सुखम्।।''

अर्थात नाद से बड़ा कोई मंत्र नहीं अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं नादानुसंधान से बड़ी कोई पूजा नहीं और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं।

नाद शब्द नद् धातु से बना है नद शब्द का अर्थ है वह ध्वनि जो अव्यक्त हो, नाद कहलाती है। नद शब्द दो अक्षरों 'न' और 'द' से मिलकर बना है। नकार का अर्थ है प्राण और दकार का अर्थ है अग्नि। इन दोनों के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है।

संगीत विद्याविशारदों का कथन भी यही है कि नाद की उत्पत्ति वायु और अग्नि के संयोग से हुई है 13वीं शताब्दी के पं. शांरगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में नाद की उत्पत्ति के विषय में लिखा है

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः
जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽमिधीयते
संगीत रत्नाकर (1/3/6)

अर्थात 'न' कार अर्थात प्राण व 'द' कार अर्थात अनल–अग्नि इन दोनों के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है।

जब जीवात्मा बोलने की इच्छा करती है तब वह मन को प्रेरित करती है। मन देहस्थ अग्नि को प्रेरित करती है अग्नि वायु को प्रेरित करती है तब वायु ब्रह्म ग्रन्थि से क्रमशः ऊपर चढ़ती है और नाभि हृदय कण्ठ मूर्धा और मुख आदि स्थानों से पाँच प्रकार के नाद उत्पन्न करती है। संगीत दर्पण में नाद के दो प्रकार बताए हैं

''आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते
सोऽयं प्रकाश्यते पिण्डे तस्मात् पिण्डोऽमिधीयते।।
(संगीत दर्पण पृ.15)

अर्थात नाद के दो प्रकार हैं आहत और अनाहत। अनाहत नाद शरीर में स्वंय उत्पन्न होता है इसलिए इसे पिण्ड नाद भी कहते हैं। इसी को गात्रवीणा भी कहा जाता है।

आहत नाद से तात्पर्य उस नाद से है जो किसी वाद्य यन्त्र पर आघात करके उत्पन्न किया जाता है। आहत नाद का प्रयोग संगीत में मनोरंजन के लिए किया जाता है जबकि अनाहत नाद का प्रयोग ऋषि – मुनि नाद साधना में करते थे। इसे केवल अनुभव से जाना जा सकता है। हमारे हृदय में जो खाली स्थान है हृदयकाश कहते हैं। उस स्थान पर यह नाद उत्पन्न होता है और थोड़ा सा ध्यान देने पर हम इसे सुन पाते हैं। इस नाद की साधना से हमें आनन्द की प्राप्ति होती है। सुख की कामना समाप्त हो जाती है और फिर दुःख का तो प्रश्न ही नहीं।

परन्तु जनसाधारण इसका उपयोग कैसे करें यह जन–जन तक पहुंचाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय संगीत है। संगीत में केवल आहत नाद का प्रयोग होता है अनाहत का नहीं। परन्तु यदि अनाहत नाद का प्रयोग भी एक श्रेष्ठ रुप में किया जाए तो संगीत से इहलोक और परलोक का आनन्द भली भांति मिल सकता है। इसके लिए आहत द्वारा अनाहत को संपदित करके कुछ समय के लिए सूक्ष्म नाद से स्थूल में परिवर्तित किया जाए और फिर सूक्ष्म और स्थूल के संयोग को महसूस किया जाए और कुछ समय पश्चात स्थूल को अलग कर दिया जाए तो केवल सूक्ष्म नाद बच जाएगा फिर उसी पर ध्यान केन्द्रित करके अनाहत नाद को स्पष्ट रुप से सुना व समझा जा सकता है। इस नाद को अन्तर्नाद या अंतस नाद कहा जाता है। इस नाद को हम दोनों कान बंद करके भी महसूस कर सकते हैं और जितना ज्यादा उस नाद को सुनेगें उतनी ही आनन्द की प्राप्ति होगी।

यद्यपि कहा जाता है कि अनाहत नाद का प्रयोग संगीत में नहीं होता परन्तु इस प्रकार से अनाहत और आहत दोनों नाद का प्रयोग संगीत में किया जा सकता है। आहत नाद के माध्यम से स्वरोत्पति की जाती है स्वर से सप्तक सप्तक से राग बनाकर जब प्रस्तुत किया जाता है तो श्रोता भाव–विभोर हो जाते हैं और एक ऐसी स्थिति भी आती है जब द्रुत लय का झाला या द्रुत लय की तान ली जा रही होती है और श्रोताओं की समाधि सी लग जाती है साधारण से साधारण श्रोता भी सांस रोककर बैठा होता है। यह वही स्थिति है जो अनाहत नाद को सुनने के पश्चात होती है क्योंकि हम भीतर की तरफ मुड़ गए और वही स्थिति तब प्राप्त होगी जब हम बाहर की तरफ मुड़ेंगे बस यात्रा का अन्तर है एक तरफ ज्यादा है दूसरी तरफ कम। आनन्द दोनों में है परन्तु एक में समय कम लगता है दूसरे में ज्यादा, एक में खतरे कम है दूसरे में ज्यादा, क्योंकि संगीत साधना के पड़ाव बहुत है पहले तो स्वर साधना फिर राग साधना सांसारिक लोगों से सम्बद्ध इत्यादि और यदि सही समय या सीमा तक न सीख पाऐं तो वह स्थिति बन भी नहीं सकती। जबकि साधारण सा व्यक्ति भी यदि थोड़ा सा अभ्यास करके अनाहत से जुड़ जाए तो उसे वहीं से रस आना प्रारम्भ हो जाएगा।

यद्यपि इस विषय पर सदियों से काम हुआ है सबने अपने–अपने ढंग से या अनुभव से इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है परन्तु अनुभव विचार ढंग सबका अपना–अपना और अलग–अलग है। हम स्वयं जब इसे अनुभव करेंगे तो हमारा विचार सर्वथा भिन्न होगा।

अन्तर्नाद को हम स्वयं से जोड़कर आनन्द की स्थिति प्राप्त कर सकते हैं इसके लिए हमें बस इतना करना है कि सुबह जब भी हम उठें बिना किसी से बातचीत किए पालथी मारकर बैठ जाए। कुछ करने की आवश्यकता नहीं बस जो भीतर सुनाई दे रहा हो उसे सुनें। आँखे बन्द रखें और न सुनाई दे रहा हो तो अपने कानों को बन्द करें और फिर सुने। अवश्य सुनाई देगा। इसी को अन्तर्नाद कहते हैं। इसको कुछ दिनों तक सुनने का अभ्यास करते रहें तो स्पष्ट रुप से इसे सुना व समझा जा सकता है। इसके पश्चात जो घटित होगा वह सबका अपना अलग–अलग अनुभव होगा किसी को जल्दी होगा किसी को थोड़ा समय लग सकता है इस स्थान तक सभी निर्देश दे सकते हैं परन्तु इसके पश्चात स्वयं का निर्देश भी बन्द हो जाना चाहिए क्योंकि काल्पनिक वैचारिकता से बचना हर स्थान पर बहुत आवश्यक होता है। अन्यथा हम अपनी कल्पना अपने श्रेष्ठ विचार पर सांसारिक कल्याण की भावना इत्यादि के विचार में स्वयं को उलझा सकते हैं जबकि हमें निर्विकार, निर्विचार होकर बस उस अर्न्तनाद को सतत सुनना है और उसके साथ बहना है। आगामी निर्देश आपके अन्तस से मिलने प्रारम्भ होगें और फिर प्रारम्भ होगी आपकी अन्तस की यात्रा। जिसमें होगें केवल अर्न्तनाद आनन्द और हम।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

व्यास, श्रीमद् भगवत महापुराण, गीताप्रेस गोरखपुर
व्यास, श्रीमद् भगवत गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
आद्य शंकराचार्य, भज गोविन्द स्तोत्र
तुलसीदास, रामचरित मानस, गीताप्रेस गोरखपुर
शारंगदेव पं., संगीत रत्नाकर, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0 प्र0
दामोदर पंडित, संगीत दर्पण, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0 प्र0